काव्य का स्वरूप या लक्षण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

समन्वयवादी आचार्य मम्मट ने काव्यलक्षण को प्रस्तुत करते हुए कहा है-

“तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि”।

अर्थात् दोषरहित, गुणसहित, कहीं-कहीं स्पष्ट अलंकारों से रहित भी शब्द और अर्थ (मिलकर) काव्य हैं।

कारिका में उल्लिखित “क्वापि” को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है- **“क्वापीत्यनेनैतदाह यत्सर्वत्र सालङ्कारौ, क्वचित्तु स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः”।** अर्थात् यथासम्भव तो शब्द और अर्थ सर्वत्र अलंकृत हों किन्तु यदि कहीं स्फुटरूप से कोई अलंकार न भी हो तो भी वहाँ रसादि के होने से काव्यत्व में कोई क्षति नहीं हुआ करती।

आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य-लक्षणों का पर्याप्त मनन एवं चिन्तन कर अपना काव्य-लक्षण प्रस्तुत किया है अतः उनके काव्य लक्षण के प्रतिपादन के पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य-लक्षणों पर विचार करना अपेक्षित है। अग्निपुराणकार काव्यलक्षण का निरूपण करते हुए कहते हैं-

संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्।।

अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली को काव्य कहते हैं और स्फुट अलंकार से युक्त, गुणयुक्त एवं दोषरहित वाक्य को काव्य कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मम्मट ने अग्निपुराण के काव्य-लक्षण को सामने रखकर अपना काव्यलक्षण प्रस्तुत किया है। मम्मट के पूर्व भोज ने अग्निपुराण को अनुसरण करते हुए काव्य का स्वरूप प्रतिपादित किया है-

अदोषं गुणवद्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।

रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

भोज का काव्य लक्षण अग्निपुराण के काव्यलक्षण पर आधारित हैं। उन्होंने अग्निपुराण के अनुसार निर्दोष, गुणयुक्त, सालंकार वाक्य को तो काव्य माना है किन्तु 'रसान्वित' वाक्य को भी काव्य का विशेषण स्वीकार किया है। इस प्रकार भोज के अनुसार दोषहीन, गुणसमन्वित, अलंकारविभूषित और रसान्वित वाक्य काव्य है। भामह ने 'शब्दार्थों सहितौ काव्यम्' यह, काव्य-लक्षण प्रस्तुत किया है। भामह का यह काव्य-लक्षण संक्षिप्त होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। दण्डी ने **'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'** काव्य-लक्षण प्रस्तुत किया है । इस प्रकार दण्डी ने 'इष्ट अर्थ से युक्त पदावली' को काव्य माना है। दण्डी को अग्निपुराण का काव्य-लक्षण अभीष्ट था, अतः उन्होंने उसे स्वीकार करते हुए 'संक्षेपाद्वाक्यम्' के स्थान पर 'शरीरं तावत्' रख दिया है। वस्तुतः अग्निपुराण का काव्य-लक्षण अपने में पूर्ण है। अग्निपुराणकार ने इष्ट अर्थ से युक्त पदावली को वाक्य कहा है और स्फुरदलंकार, गुणवत्, दोषवर्जित वाक्य (पदावली) को काव्य कहा है। अग्निपुराण के अनुसार इष्ट अर्थ से युक्त पदावली काव्य है अर्थात् अर्थ युक्त शब्द काव्य है, क्योंकि अर्थ शब्द के बिना नहीं रह सकता। वामन उपर्युक्त काव्यलक्षण को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः। स च दोषगुणालंकारहानोपादानाभ्याम्। रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्टपदरचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा। अत्र च 'काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वतेते"। इस प्रकार वामन के मतानुसार दोष के परित्याग और गुण अलंकार से युक्त सुन्दर शब्द और अर्थ काव्य है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा कहा है। ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन ने काव्य के शरीर तथा आत्मतत्त्व पर विचार करते हुए ध्वनि को काव्य की आत्मा (ध्वनिरात्मा काव्यस्य) और 'शब्दार्थयुगल' को काव्य का शरीर **(शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम्)** माना है। इस प्रकार ध्वनिकार ने सहृदयहृदयाह्लादि व्यंग्यात्मक शब्द और अर्थ को काव्य माना है (**"सहृदयहृदयाह्लादिव्यंग्यात्मकौ शब्दार्थों काव्यम्"**। आनन्दवर्धन के अनुसार सहृदयहृदयश्लाघ्य अर्थ काव्य की आत्मा है (**योऽर्थः सहृदश्लाघ्यः काव्यस्यात्मा व्यवस्थितः**)। कुन्तक ने वक्रोक्ति

अर्थात् कवि के वक्र व्यापार को काव्य की आत्मा स्वीकार हुए वैदग्ध्यभंगीभणिति रूप शब्दार्थ को काव्य माना है।

उपर्युक्त सभी मतों को दृष्टिगत करते हुए आचार्य मम्मट ने एक परिमार्जित काव्य लक्षण प्रस्तुत किया है- "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"।

आचार्य मम्मट समन्वयवादी आचार्य हैं। उनके पूर्व काव्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार होता रहा है। आचार्यों ने विभिन्न दृष्टियों से काव्य के स्वरूप पर विचार किया है। पहले काव्य के शरीर पक्ष पर विचार होता रहा और शब्दार्थ युगल को काव्य का शरीर स्वीकार किया गया, बाद में आत्मतत्त्व की ओर लोगों का ध्यान गया और रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य को काव्य की आत्मा माना जाने लगा। इस प्रकार विभिन्न मत-मतान्तरों के विवेचन से एक प्रकार की अव्यवस्था फैल गई । मम्मट ने समन्वयात्मक दृष्टि अपनाकर आचार्यों के मतों का सार ग्रहण कर एक नवीन काव्य लक्षण तैयार किया। उन्होंने दोषहीन, गुणयुक्त, सालंकार क्वचित् स्फुटालंकाररहित शब्दार्थ को काव्य माना है। इस प्रकार मम्मट के अनुसार-शब्द और अर्थ का समष्टि रूप काव्य है और शब्दार्थों के तीन विशेषण दिये गये हैं-(१) अदोषौ (२) सगुणो और (३) अनलंकृती पुनः क्वापि । यहाँ प्रत्येक का अलग-अलग विवेचन किया जा रहा है-

अदोषौ-'अदोष' पद का अर्थ है- 'दोषाभाव'। अर्थात् काव्य में च्युतसंस्कारादि जो काव्यविघातक दोष बताये गये हैं उनसे रहित। इस प्रकार दोषरहित शब्दार्थ काव्य है। अतः काव्य का दोषरहित होना नितान्त अपेक्षित है। यहाँ पर अदोषता का अभिप्राय सर्वथा दोषाभाव नहीं, बल्कि प्रबल दोषों का अभाव है जो काव्य के विघातक होते हैं। यहाँ पर दोषाभाव का तात्पर्य ऐसे दोषों के अभाव से है जो उद्देश्यों की प्रतीति के प्रतिबन्धक हैं-"उद्देश्यप्रतीतिप्रतिवन्धकत्वम्"। इसके अतिरिक्त आचार्य मम्मट का ही कथन है कि वक्ता, प्रतिपाद्य, प्रकरण आदि के औचित्य के कारण कहीं-कहीं दोष भी गुण हो जाता है-"वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुणः क्वचित्"। इस प्रकार मम्मट के अनुसार 'दोषरहित शब्दार्थयुगल' काव्य है और दोषरहित से तात्पर्य सर्वथा दोषाभाव नहीं, बल्कि उद्देश्य-प्रतीति के विघातक तत्त्वों से है क्योंकि सर्वथा दोषरहित काव्य मिलना कठिन है। यदि यहाँ पर 'ईषत्' अर्थ में

'नञ्' का प्रयोग मानकर 'अदोषो' का अर्थ 'ईषद्दोषौ' मान लिया जाय दो जहाँ थोड़ा दोष होगा वही काव्य कहलायेगा और सर्वथा निर्दोष काव्य काव्य नहीं कहलायेगा। इसलिए 'अदोषौ' पद का अर्थ विशिष्ट दोषाभाव किया गया है अर्थात् रसानुभूति के बाधक विशिष्ट (प्रबल) दोषों से रहित शब्दार्थयुगल काव्य है, अतः साधारण दोष, जिनसे रसानुभूति में कोई बाधा नहीं होती, के रहने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं होती, जैसा कि विश्वनाथ ने स्वयं कहा है कि जिस प्रकार कीड़ों के द्वारा खाया हुआ प्रवाल आदि रत्न रत्न ही कहलाते हैं, उसी प्रकार काव्य में दुर्बल दोषों के रहने पर भी काव्यत्व में कोई क्षति नहीं होती-

कीटानुविद्धरत्नादिसाधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।।

सगुणौ- "शब्दार्थौ" का दूसरा विशेषण है 'सगुण'। मम्मट के पूर्व वामन ने भी 'शब्दार्थयुगल' काव्य का विशेषण 'सगुणौ' दिया है किन्तु दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है। वामन गुण को शब्द और अर्थ का धर्म मानते हैं जबकि मम्मट रस का। मम्मट के अनुसार प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणत्रय रस के धर्म हैं, रस के उत्कर्ष के हेतु हैं और रस में अचल स्थिति से रहते हैं-

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

इस प्रकार गुण रस के धर्म हैं किन्तु परम्परया ये रसाभिव्यंजक शब्द और अर्थ के भी धर्म कहे गये हैं-"गुणानां रसैकनिष्ठत्वेऽपि परम्परया तदभिव्यञ्जकशब्दार्थनिष्ठत्त्वमपि"। अर्थात् गुण रसनिष्ठ होते हैं किन्तु उपचारतः ये शब्दार्थनिष्ठ भी कहे जाते हैं।

कतिपय आचार्य सगुणौ के स्थान पर सरसौ के प्रयोग पर बल देता हैं लेकिन वह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि 'सरसौ' को 'शब्दार्थौ' का विशेषण रखा जाय तो उससे 'रसाभिव्यंजक' शब्दार्थ का भाव भले ही निकल जाय किन्तु 'गुणाभिव्यंजक' शब्दार्थ का भाव नहीं निकल सकता।

अनलंकृती पुनः क्वापि-आचार्य मम्मट के काव्य लक्षण में 'शब्दार्थौ' का तृतीय विशेषण 'अनलंकृती' है। यहाँ पर 'अनलंकृती' का अर्थ सर्वथा 'अलंकाररहित' नहीं है । जैसाकि कहा गया है कि 'नञ् के छः अर्थ होते हैं-

तत्सादृश्यं तदन्यत्वं तदल्पत्वं विरोधिता।
अप्राशस्त्यमभावश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः।।

'अनलंकृती' इस पद में 'अल्पत्व' (ईषद्) अर्थ में नञ् समास है (अनलंकृतीत्यत्र ईषदर्थे नञ् , अनुदरा कन्या, अलवणा यवागूः इत्यादिवत्)। जिस प्रकार अलवणा में अल्प अर्थ में 'नञ्' का प्रयोग करके 'अल्पलवणा'-अल्प (कम) नमक से युक्त, अर्थ होता है और 'अनुदरा' का 'अल्पोदरी', 'कृषोदरी' अर्थ किया जाता है, उसी प्रकार अनलंकृती' पद में 'ईषद्' अर्थ में नञ् समास किया है। अतः 'अनलंकृती' पद का अर्थ 'अलंकारों की अल्पता' (न्यूनता) किया जाता है। झलकीकर ने 'ईषद्' का अर्थ 'अस्फुटता' किया है। इस प्रकार इसका अर्थ होगा कि 'सालंकार शब्द और अर्थ काव्य होते हैं किन्तु कहीं-कहीं अलंकारों की स्पष्ट स्थिति न रहने पर भी काव्य कहलाते हैं, जैसा कि मम्मट ने कहा है-'सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्तु स्फुटालंकारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः'। किन्तु नीरस काव्य में अस्फुट अलंकार होने पर काव्यत्व नहीं होता, जहाँ पर रस की स्थिति होती है अर्थात् सरस काव्य में अस्फुट अलंकार हों तो काव्यत्व होता है क्योंकि काव्य में मुख्य तत्त्व चमत्कार है वह चमत्कार दो प्रकार का होता है- रस के द्वारा अथवा अलंकार के द्वारा। दोनों में एक का होना आवश्यक है। जहाँ पर रस हो वहाँ स्फुट अलंकार की अपेक्षा नहीं होती।

आचार्य मम्मट ने स्फुटालंकारविरह का उदाहरण दिया है-

यः कौमारहरः स एव वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।।

यहाँ पर कोई नायिका कहती है कि जिसने मेरे कामार्य का हरण किया है, वही मेरा पति है, वही चैत की रातें, वही विकसित मालती लताओं की सुगन्धित प्रौढ़ (रत्युद्दीपक) कदम्ब (पुष्प विशेष) की हवाएं

हैं और मैं भी वही हूँ, तथापि (फिर भी) वहाँ नर्मदा के तट पर उस वेत्रलता (वेत की झाड़ी) के नीचे सुरतव्यापार की लीलाओं (काम-क्रीड़ा) के लिए मेरा चित्त (मन) उत्कण्ठित हो रहा है।

यहाँ पर कोई स्फुट अलङ्कार नहीं है और रस की प्रधानता के कारण उसे (रसवदलङ्कार) अलङ्कार भी नहीं कहा जा सकता।

यहाँ यदि यह कहा जाय कि यहाँ पर 'हरो वरः' में 'र' वर्ण की आवृत्ति होने से स्फुट अनुप्रास अलंकार है, किन्तु यहाँ विप्रलम्भ शृंगार के प्रतिकूल वर्ण का संघटन होने से अलंकारत्व नहीं है। रस की प्रधानता के कारण यहां पर अलंकारत्व नहीं है (रसस्यात्र प्राधान्यात्नालंकारता)। भाव यह कि यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार रस की प्रधानता है अतः रसवत् अलंकार नहीं हो सकता; क्योंकि जहाँ पर रस की प्रधानता होती है वहां 'रसवत्' अलंकार नहीं होता जहां पर रस की प्रधानता नहीं होती, वहीं पर 'रसवत्' अलंकार होता है । इस प्रकार यहां पर कोई अलंकार स्पष्ट नहीं है। यहां पर तो सहृदय विप्रलम्भशृंगार में ही मग्न है।